पुस्तक का नाम	बच्चे की भाषा और अध्यापक – एक निर्देशिका
लेखक	कृष्ण कुमार
मूल्य	पच्चीस रुपए
संस्करण	मई, 1996
प्रकाशक	नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली

लता पाण्डे*

बच्चे के व्यक्तित्व और उसकी क्षमताओं के विकास को आकार देने में भाषा एक विशेष भूमिका निभाती है। "बच्चे की भाषा और अध्यापक – एक निर्देशिका" पुस्तक नर्सरी और प्राइमरी स्कूल के बच्चों के अध्यापकों, इन अध्यापकों के प्रशिक्षकों, निरीक्षकों और पाठ्यक्रम बनाने वालों के लिए है। पुस्तक के लेखक प्रो. कृष्ण कुमार दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग के अध्यक्ष तथा एन. सी. ई. आर. टी., नयी दिल्ली के निदेशक रह चुके हैं।

पाँच अध्यायों में लिखी गई इस पुस्तक में दी गई गतिविधियों को टीकमगढ़ (मध्य प्रदेश) के बाल साहित्य केंद्र में आजमाया गया है। भूमिका में बच्चों के प्रति आभार प्रकट करते हुए प्रो. कृष्ण कुमार लिखते हैं– इन बच्चों ने भाषा की शिक्षा के व्यावहारिक पहलुओं और परिप्रेक्ष्य को समझने में मेरी मदद की। यह पुस्तक किसी एक खास भाषा के अध्यापन की निर्देशिका कतई नहीं है। यह पुस्तक उन ज़रूरतों के बारे में है जिन्हें कोई भी भाषा बच्चों के जीवन में पूरा करती है।

सरल और सरस भाषा तथा अत्यंत रोचक शैली में लिखी इस पुस्तक में बच्चों के जीवन से जुड़ी अनेक गतिविधियों तथा उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि भाषा केवल संप्रेक्षण का माध्यम ही नहीं है बल्कि बोलने, महसूस करने और चीजों से जुड़ने के साधन के रूप में भी भाषा की उपयोगिता है। लेखक के ही शब्दों में– शिशु के व्यक्तित्त्व और उसकी क्षमताओं के विकास को आकार देने में भाषा एक विशेष भूमिका निभाती है। एक सूक्ष्म किंतु

* *एसोसिएट प्रोफेसर*, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली।

मज़बूत ताकत की तरह भाषा संसार के प्रत्येक बच्चे के दृष्टिकोण, उसकी रुचियों, क्षमताओं यहाँ तक कि मूल्यों और मनोवृत्तियों को आकार देती है।

यह सब कैसे होता है? पहले अध्याय *भाषा माने क्या?* का विषय यही है। दुनिया का प्रत्येक बच्चा–चाहे उसकी मातृभाषा कोई भी हो – भाषा का इस्तेमाल कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करता है। एक बड़ा उद्देश्य है दुनिया को समझना और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भाषा एक बढ़िया औज़ार का काम देती है। जब तक हम बच्चे की निगाह से और बच्चे की जिंदगी में भाषा की भूमिका को समझने में असमर्थ रहते हैं, तब तक हम अध्यापकों, माता–पिता या देख–रेख करने वालों के रूप में अपनी भूमिका ठीक से तय नहीं कर पाते।

बच्चों की भाषा का संबंध अनुभवों से हैं। एक अध्यापक को कक्षा में ऐसा वातावरण निर्मित करना है जिसमें बच्चे भाषा को लगातार जीवन के अनुभवों से जोड़ सकें। बच्चों को स्वयं कुछ करने, सीखने के अवसर प्रदान कर ही भाषायी कौशलों का विकास किया जा सकता है।

बच्चे भाषा का प्रयोग कई उद्देश्यों के लिए करते है। बच्चे अपने कार्य, दूसरों के क्रियाकलापों और ध्यान का संचालन, खेलने में, अपनी बात को समझाने, जीवन को प्रस्तुत करने आदि के लिए भाषा का इस्तेमाल करते हैं – इसे विभिन्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

बच्चे की दुनिया में भाषा क्या–क्या करती है, के पश्चात् *हमारी बात का असर हम पर ही पड़ता है,* शीर्षक के अंतर्गत हम भाषा को किस प्रकार अपनी परिस्थिति के अनुसार ढाल सकते हैं, पर चर्चा की गई है।

पहले अध्याय के अंत में लेखक अध्यापक की भूमिका की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि भाषा बच्चे के व्यक्तित्त्व को इसलिए प्रभावित करती है क्योंकि बच्चा भाषा द्वारा रचे गए वातावरण में जीता और बड़ा होता है। इस वातावरण को बनाने में अध्यापक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। यदि अध्यापक बच्चे के जीवन में भाषा के विभिन्न कार्यक्षेत्रों के प्रति संवेदनशील है तो वह बच्चे की बौद्धिक और भावनात्मक ज़रूरतों के अनुकूल कदम उठा सकता है।

अध्याय दूसरे का शीर्षक है *बात।* अनुशासन कें नाम पर बच्चों को कक्षा में बातचीत के अवसर न देने से संबंधित चर्चा करते हुए लेखक कहते हैं– हजारों स्कूलों में बात करना प्रायः गलत समझा जाता है। यह माना जाता है कि यदि कोई बात कर रहा है तो ठीक से पढ़ाई नहीं कर रहा होगा। इसलिए जैसे ही अध्यापक बच्चों को बात करता हुआ देखता है, वह तुरंत उन्हें रोकता है। बात करने की छूट बच्चों को सिर्फ़ आधी छुट्टी में रहती है जब अध्यापक कोई महत्वपूर्ण काम नहीं कर रहा होता है। बातचीत के प्रति उपेक्षा की वजह से हम शिक्षा में बातचीत के उपयोगों की अवहेलना करते आ रहे हैं। यह स्थिति सभी स्तरों पर है, पर प्रारंभिक स्तर पर सबसे स्पष्ट है।

बच्चों की बातचीत को शिक्षण सामग्री के रूप में इस्तेमाल करने के इच्छुक अध्यापकों

को बातचीत के लिए अनुकूल वातावरण बनाने पर बल देते हुए लेखक सुझाव देते हैं कि –

- हर बच्चा यह महसूस करे कि जब वह कुछ कहेगा तो उसे सुना जाएगा और
- सभी बच्चे यह महसूस करें कि अध्यापक को उनका बोलना अच्छा लगता है। कक्षा में बच्चों की बातचीत को प्रोत्साहित करने वाले अवसरों को पाँच कोटियों में रखा जा सकता है –

1. अपने बारे में बातचीत के अवसर देना
2. स्कूली अनुभवों पर बात करने के अवसर देना।
3. तस्वीरों पर चर्चा करना
4. कहानियाँ सुनना और उन पर चर्चा करना।
5. अभिनय करना।

इसी अध्याय में ग्यारह गतिविधियाँ दी गई हैं जिनका केंद्र बातचीत है और जिसके माध्यम से बच्चे में अपने आसपास की दुनिया के साथ संबंध स्थापित करने की क्षमता का विकास होता है।

अध्याय तीसरे *पढ़ना* के अंतर्गत 'सही मायनों में पढ़ना है क्या?' पर चर्चा की गयी हैं। बकौल लेखक– छोटे बच्चों के अध्यापक को जो तमाम चुनौतियाँ झेलनी पड़ती हैं, पढ़ना सिखाना शायद उनमें सबसे कठिन चुनौती है। पढ़ने का स्वस्थ कौशल बच्चे के समग्र विकास में क्या भूमिका निभाता है, यह किसी अध्यापक को याद दिलाने की ज़रूरत नहीं। लेकिन ऐसा लगता है कि बहुत कम अध्यापक यह जानते हैं कि 'पढ़ने का स्वस्थ कौशल' किसे कहेंगे और उसका विकास कैसे किया जा सकता है? इस अध्याय में 'पढ़ने का स्वस्थ कौशल' हम उन कौशलों के समूह को मानेंगे जो लिखी या छपी भाषा को अर्थ से जोड़ने में बच्चे की मदद करते हैं। जब तक एक बच्चा पढ़ी हुई सामग्री को समझने या पहले से ज्ञात किसी चीज़ से जोड़ने में असमर्थ रहता है तब तक हम उसकी पढ़ने की क्षमता को स्वस्थ नहीं कह सकते। परंपरागत ढंग से चली आ रही पढ़ना सिखाने की वर्णमाला पद्धति पढ़ना सीखने के उत्सुक बच्चे के लिए पढ़ना सीखना नीरस बना देती है। पढ़ने की आरंभिक शिक्षा को सार्थक बनाने के लिए अच्छा है कि पढ़ना सिखाने की शुरुआत किताबों से की जाए ताकि बच्चे को कुछ सार्थक पढ़ने का रस मिले। बच्चों को किस प्रकार किताब पढ़कर सुनायी जाए, इससे संबंधित सुझाव देते हुए लेखक लिखते हैं कि यदि हर बच्चे को सप्ताह में दो-तीन बार किताब सुनने को मिले तो बच्चे जानी हुई तथा पढ़ी हुई किताबों पर बात करना शुरू कर देंगे। कुछ ही समय में वे चित्रों और कहानी से इतने परिचित हो जाएँगे कि पढ़ने का अनुमान लगा सकेंगे। इसी अनुमान के सहारे एक दिन पूरी किताब पढ़ लेंगे। पढ़ने की कुंजी अनुमान लगाने का कौशल है। इस कौशल के विकास में कविता आश्चर्यजनक योगदान कर सकती है पठन कौशल के विकास हेतु *किताबें बनाने से* संबंधित अनेक सुझाव दिए गए हैं। अध्याय के अंत में 'पढ़ना' के अंतर्गत बच्चे के व्यक्तित्व के समग्र विकास का हिस्सा बनाने संबंधी बात की गयी है।

अध्याय चार का विषय है **लिखना।** लेखक के ही शब्दों में – लिखना एक तरह की

बातचीत ही है। लिखते वक्त हम किसी से संवाद कर रहे होते हैं, हालाँकि प्रायः वह व्यक्ति हमारे सामने नहीं होता। अध्यापक की हैसियत से हमें बच्चों को लेखन का परिचय बातचीत के रूप में देना चहिए। आज लिखना सिखाने के नाम पर जो कुछ हो रहा है हम उससे किसी एकदम भिन्न चीज़ की चर्चा कर रहे हैं। लाखों बच्चों को लिखना एक यांत्रिक कौशल की तरह सिखाया जा रहा है। बच्चों की कॉपियाँ लाल स्याही से किए गए सुधारों में रंगी रहती हैं। दूसरी तरफ़ जब बच्चा हर चीज़ ठीक लिखकर लाता है तो अध्यापक केवल सही का चिह्न बनाकर दस्तखत कर देता है। ये दोनों ही प्रतिक्रियाएँ अधूरी और हानिप्रद हैं। बच्चे की गलतियाँ सुधारने या सही का चिह्न लगाने के अलावा अध्यापक को बच्चे के लेखन की प्रतिक्रिया में कुछ-न-कुछ स्वयं भी लिखना चाहिए। बच्चे की कॉपी पर एक या दो वाक्य लिखकर आप उसे इस बात का प्रमाण देंगे कि आप लेखन को एक यांत्रिक क्रिया नही, एक संवाद की तरह मानते हैं। यह अध्यापक पर निर्भर है कि बच्चे लिखने को संबोधन या किसी से कुछ कहने की तरह ले पाते हैं या नहीं।

अध्याय पाँच का विषय है- *स्कूल का यथार्थ और भाषा-शिक्षण।* अध्याय की शुरुआत में लेखक लिखते हैं-इस किताब को पढ़ने वाले अध्यापकों के मन में एक सवाल पैदा होना स्वाभाविक है। यह सवाल है क्या इस पुस्तक में दिए गए सुझावों पर एक साधारण प्राइमरी स्कूल की परिस्थितियों में अमल किया जा सकता है? दूसरे शब्दों में, इस प्रश्न में यह शंका व्यक्त की गयी है कि यह किताब स्कूल के कठिन यथार्थ में टिकेगी या नहीं।

स्कूल के यथार्थ को हम तीन तरफ़ से देख सकते हैं। एक तरफ़ उसमें स्कूल की इमारत, उसका भौतिक परिवेश और कक्षा का ढ़ाँचा शामिल है। इस अध्याय में मौजूदा परिस्थितियों के चलते कक्षा के वातावरण को बेहतर बनाने के लिए कुछ संभव उपाय दिए गए हैं।

स्कूल के यथार्थ का दूसरा हिस्सा परंपरावश चली आ रही शिक्षण और परीक्षण की विधियाँ है। ये विधियाँ हमारी शिक्षा व्यवस्था पर कई पीढ़ियों से हावी हैं, और कुछ विधियों की जड़ें तो सदियों पुरानी हैं। इस निर्देशिका में मुख्य ज़ोर इसी बात पर दिया गया है कि भाषा का शिक्षण पाठ्यपुस्तक की संकीर्ण परिधि से बाहर निकले। भाषा शिक्षण का उद्देश्य पाठ्यपुस्तक की पढ़ाई नहीं, भाषा से जुड़े कौशलों का विकास है। इसी अध्याय में *परीक्षा के विकल्प* उपशीर्षक के अंतर्गत विभिन्न भाषायी कौशलों के आकलन हेतु सुझाव दिए गए हैं। इसके बाद *मान्यताएँ और पूर्वाग्रह* उपशीर्षक के अंतर्गत शिक्षकों के नजरिए में गहराई तक बैठे पूर्वाग्रहों की बात करते हुए लिखा है- स्कूल के यथार्थ का तीसरा पहलू बच्चों के प्रति शिक्षक के नज़रिए से पहचाना जा सकता है। ज़ाहिर है कि यह तीसरा पहलू उन दो पहलुओं से अधिक सूक्ष्म है इसी कारण यथार्थ के इस पहलू को प्रभावित करना अपेक्षाकृत ज़्यादा कठिन है। अंत में लेखक बच्चे की घर की बोली को सम्मान देने का सुझाव देते हैं क्योंकि सहज

होकर बोलने और लिखने की आज़ादी बच्चे के भाषायी विकास के लिए एक ज़रूरी शर्त है।

लेखक का मानना है– यदि यह किताब शिक्षकों को इस बात का भरोसा नहीं दिला सकी कि यह स्कूल के यथार्थ को मद्देनज़र रखकर लिखी गयी है तो यह निरर्थक सिद्ध होगी।

वस्तुत: नाना गतिविधियों और एक साधारण स्कूल की परिस्थितियों में करने योग्य सुझावों से भरपूर इस पुस्तक को पढ़ते हुए जैसे–जैसे पाठक आगे बढ़ता जाता है, पुस्तक में उसका भरोसा पुख्ता होता जाता है। पर इस भरोसे की सार्थकता इस बात में है कि पुस्तक भाषा शिक्षण के प्रति एक नवीन दृष्टि निर्माण के नज़रिए से पढ़ी जाए। साथ ही पुस्तक में दिए गए सुझावों को स्कूल के कठिन यथार्थ में अमल करने की उस शुरुआत को आगे बढ़ाया जाए जो 1985 में लेखक ने स्वयं टीकमगढ़ के बच्चों के साथ की थी। यह पुस्तक भाषा की शिक्षा के व्यावहारिक पहलुओं और परिप्रेक्ष्य को समझने में सहायक है। इसके विभिन्न अध्यायों के अंतर्गत दी गयी गतिविधियों को अपनाकर नर्सरी और प्राथमिक विद्यालयों के बच्चों के लिए भाषा सीखना तो आनंददायी बनाया जा सकता है साथ ही स्कूलों को भी बच्चों के लिए रुचिकर बनाया जा सकता है।

❑❑❑